हिन्दी दलित साहित्य के संदर्भ में ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा का योगदान

एन.बी.एन.वी. गणपति राव,
पीएचडी शोधार्थी,
हिंदी विभाग, पी.आर. कॉलेज,
आदिकवि नन्नय विश्वविद्यालय,
राजमंड्री, आंध्र प्रदेश।

बीज शब्द- दलित, साहित्यकार, पीडा, समाज, निम्न वर्ग।

आत्मकथा हिन्दी दलित साहित्य की सर्वाधिक जीवंत और ज्वलंत विधा है। आत्मकथा में दलित जीवन-चिन्तन मुखर रूप से अभिव्यक्त हुआ है। इसमें दलितों के जीवन-यथार्थ और उनकी समस्याओं तथा आशा-आकांक्षा के साथ दशा और दिशा का वास्तविक धरातल पर चित्रण हुआ है। हिन्दी में दलित लेखन सन् 1990 के दशक के बाद उजागर हुआ है। इससे पूर्व भी छुट-पुट रचनाएँ मिलती हैं, परन्तु निर्विवाद रूप से 20वीं शताब्दी का अन्तिम दशक हिन्दी दलित साहित्य की दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय रहा है। इसी समय हिन्दी साहित्य में विमर्शों का दौर शुरू होता है जिसमें स्त्री और दलित विमर्श विशेष उल्लेखनीय हैं अनुभव की गहराई और सच्चाई की दृष्टि से दलित विमर्श अधिक महत्वपूर्ण है।

दलित साहित्यकारों में ओमप्रकाश वाल्मीकि एक उत्कृष्ट साहित्यकार हैं।

ओमप्रकाश वाल्मीकि ने हिन्दी में दलित साहित्य को अभिन्न धारा के रूप में स्थापित एवं प्रतिष्ठित किया है। वाल्मीकि कृत आत्मकथा 'जूठन' सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि है। आत्मकथा दो खण्डों में प्रकाशित है। पहला खण्ड सन् 1997 ई. में राजकमल प्रकाशन से प्रकाशित हुआ है। इसमें सन् 1950 से लेकर लगभग 1985 ई. तक के दलित समाज का जटिल यथार्थ चित्रित है। आत्मकथा का दूसरा खण्ड,इनकी मृत्यु के बाद सन् 2015 ई. में प्रकाशित हुआ। इसमें सन् 1985 से लेकर सन् 2012 तक की जीवन कथा का वर्णन है।

वाल्मीकि ने अपनी आत्मकथा में भारतीय सभ्यता, संस्कृति, समाज-व्यवस्था का मानवीय परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन किया है। सन् 1950 के दलित जीवन का चित्रण करते हुए, उसमें निरन्तर हो रहे परिवर्तन को धीरे-धीरे उसके बदलते स्वरूप में दिखाया है। 'जूठन' से पूर्व हिन्दी में दो दलित आत्मकथाएँ प्रकाशित हो चुकी थीं- कौसल्या बैसन्त्री कृत 'दोहरा अभिशाप' और मोहनदास नैमिशराय कृत 'अपने-अपने पिंजरे'। परन्तु 'जूठन' के आगमन ने सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य में नये सत्य को उभारा है। पहली बार पर्दे के पीछे के यथार्थ को साहित्य जगत् में अभिव्यक्त किया गया है। जिसने हिन्दी साहित्यकारों की रचना दृष्टि और संवेदनशीलता को कठघरे में खड़ा कर दिया। इस सन्दर्भ में आत्मकथा की कुछ पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं, वाल्मीकि अपने अध्यापक से पूछते हैं, "अश्वत्थामा को तो दूध की जगह आटे का घोल पिलाया गया और हमें चावल का मांड। फिर किसी भी महाकाव्य में हमारा जिक्र क्यों नहीं आया? किसी महाकवि ने हमारे जीवन पर एक भी शब्द क्यों नहीं लिखा?"। वस्तुतः एक नए भारत की सच्ची तस्वीर साहित्य फलक में प्रस्तुत हुई। नयी संवेदना, नए भावबोध, नए विचार तथा नए परिवेश का हिन्दी साहित्य में समावेश हुआ।

लेखक ने 'जूठन' के माध्यम से दलित विमर्श के सभी मुद्दों तथा प्रश्नों को समाज के समक्ष प्रस्तुत किया है। वर्ण एवं जाति व्यवस्था का विरोध, सामाजिक असमानता, अस्पृश्यता, आर्थिक विपन्नता, बेगारी, अशिक्षा, अंधविश्वास, शैक्षणिक एवं मानसिक शोषण, गाँव से मोहभंग और शहरों की ओर पलायन, लोक-संस्कृति, लोक-मान्यताएँ, लोक- विश्वास, आरक्षण बनाम योग्यता का प्रश्न, किराए के मकान की समस्या, सरकारी

अर्धसरकारी कार्यालयों में अधिकारियों का मानसिक उत्पीड़न, मार्क्सवादियों में जातिवादी चरित्र, दलित स्त्री जीवन एवं चेतना का स्वर, दलित समाज के आपसी अन्तर्विरोध, 1978 का नामांतरण आन्दोलन आदि विविध पहलुओं पर निष्पक्ष कलम चलाई है तथा वाल्मीकि ने नयी शती में शिथिल पड़ती वर्ण-व्यवस्था की ओर भी संकेत किया है। लेखकीय प्रतिबद्धता एवं प्रामाणिकता की दृष्टि से 'जूठन' दलित साहित्य की धरोहर है।

विवेच्य आत्मकथा के अध्ययन से दलित समाज को नए सिरे से देखने-समझने का विचार पाठक के मन में उत्पन्न होता है। अब तक जिस संस्कृति की महानता का गुणगान सुनते आ रहे हैं, उसके पुनर्मूल्यांकन का प्रश्न जहन में उभरता है। साहित्यकार एवं पाठक एक दलित की दृष्टि से भारतीय सभ्यता, संस्कृति, समाज को समझने का प्रयास करता है। दलित समाज के अनुभव, उनकी व्यथा की कथा, शोषण, आक्रोश, उनकी दशा-दिशा को दलित लेखकों ने जिस प्रतिबद्धता से अभिव्यक्त किया है, वैसा वर्णन मुख्यधारा के साहित्य में नहीं है, यद्यपि एक-आध साहित्यकार इसका अपवाद हैं।

भारतीय समाज वर्णों एवं जातियों में विभाजित है। श्रेणीबद्ध श्रृंखला है, जिसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र क्रमशः पहले, दूसरे, तीसरे तथा चौथे स्थान पर हैं। इन चार वर्णों के अतिरिक्त एक और वर्ण है जिसे अंत्यज, अतिशूद्र, पंचम-वर्ण, अछूत, अस्पृश्य आदि नाम से संबोधित किया गया है। वर्तमान में इसके स्थान पर 'दलित' शब्द का प्रयोग किया जाता है। वर्ण-व्यवस्था भारतीय समाज की धुरी है। इस व्यवस्था ने हिन्दू समाज के सभी वर्णों को सदियों से एक-दूसरे से अलगाये रखा। यहीं से दलित समाज के शोषण की प्रक्रिया और विशेष प्रकार की मानसिकता का गठन होता है जिसे समाज व्यवस्था के अंतिम वर्ण की अंतिम जाति से समझने-समझाने की लेखक ने जबरदस्त कोशिश की है और इसमें आत्मकथाकार को सफलता भी मिली है।

वर्ण-व्यवस्था ने हिन्दू समाज में विशेष प्रकार की जातिवादी मानसिकता को जन्म दिया है। जाति आधारित श्रेष्ठ एवं तुच्छ मानसिकता दलितों के शोषण की जन्मदात्री है। इसे गढ़ने और सुदृढ़ करने में धार्मिक ग्रन्थों, स्मृतियों, ऋषि-मुनियों ने

अपना-अपना योगदान दिया है। सामाजिक संरचना को सुचारू रूप से गतिशील बनाये रखने के लिए जिन नियमों को बनाया गया, वे कालान्तर में समाज की बहुसंख्यक आबादी के लिए अहितकर साबित होते हैं तथा उनके शोषण का आधार बनते हैं। इन्हीं मूल्यों के प्रतिरोध में दलित साहित्य का जन्म हुआ। विवेच्य आत्मकथा का आरम्भ डब्बोवाली जोहड़ी और उसके आसपास के परिवेश से होता है और यह परिवेश सम्पूर्ण कृति की अंतर्वस्तु की अभिव्यंजना है। "जोहड़ी के किनारे पर चूहड़ों के मकान थे जिनके पीछे गाँव भर की औरतें, जवान लड़कियाँ, बड़ी-बूढ़ी, यहाँ तक कि नई नवेली दुल्हनें भी इसी डब्बोवाली के किनारे खुले में टट्टी-फरागत के लिए बैठ जाती थीं। रात के अंधेरे में ही नहीं, दिन के उजाले में भी... इसी जगह गाँव भर के लड़ाई-झगड़े, गोलमेज कान्फ्रेंस की शक्ल में चर्चित होते थे। चारों तरफ गन्दगी भरी होती थी। ऐसी दुर्गन्ध कि मिनट भर में साँस घुट जाए। तंग गलियों में घूमते सूअर, नंग-धड़ंग बच्चे, कुत्ते, रोजमर्रा के झगड़े-बस, यह था वह वातावरण जिसमें बचपन बीता।" यह परिवेश गाँव की भंगी जाति के अस्तित्व पर सवाल उठाता है। उपरोक्त पंक्तियों को पढ़कर सवर्ण पाठक भी विचलित हो जाता है। सवर्ण-समाज मल-मूत्र के त्याग के लिए जिन स्थानों पर जाते हैं, उन स्थानों पर इनकी बस्तियाँ हैं, यह केवल वाल्मीकि के गाँव का परिवेश नहीं है बल्कि हिन्दुस्तान के प्रत्येक गाँव और दलित बस्ती का सच्चा चित्र है। जिससे रूबरू होकर सवर्ण पाठक की चेतना आन्दोलित हो उठती है। आत्मकथा का आरम्भ इन मार्मिक पंक्तियों में हुआ है तो निश्चित ही अंत तक पहुँचते-पहुँचते पाठकीय संवेदना परिपक्व हो नवीन दृष्टि से सराबोर होती है। 'जूठन पहला खण्ड' में लेखक ने अपने जीवन के विविध पहलुओं पर निष्पक्ष रूप से कलम चलाई है।

आत्मकथा में लेखक ने जातिगत उत्पीड़न की प्रक्रिया को स्पष्ट दिखाया है। जातिगत हीनता बोध तथा शोषण के लिए वर्ण-व्यवस्था जिम्मेदार है इसलिए जब तक इस व्यवस्था पर प्रहार कर तोड़ा नहीं जाएगा तब तक दलितों को वर्ण एवं जाति आधारित शोषण से मुक्ति नहीं मिल सकती। आत्मकथा में लेखक ने बार-बार 'वर्ण' पर प्रहार किया है और उसे दलितों की बर्बादी के लिए जिम्मेदार ठहराते हुए लिखा है, "इस माहौल में यदि वर्ण-व्यवस्था को आदर्श-व्यवस्था कहने वालों को दो-चार दिन रहना पड़ जाए तो उनकी राय बदल जाएगी।" दलित समाज की दूसरी बड़ी समस्या सवर्णों द्वारा शोषण है। उत्पादन के साधनों के अभाव में यह समाज सवर्ण समाज पर निर्भर था।

जीविकोपार्जन के लिए इन्हें सवर्णों के घरों में प्रत्येक प्रकार के काम करने पड़े जिससे बेगारी प्रथा, बंधुआ मजदूरी, सालाना नौकरी जैसी समस्याओं का जन्म हुआ। वाल्मीकि कहते हैं कि आर्थिक असमानता ने दलितों की ज़िन्दगी को नरक की ओर धकेला है जिससे वह आज तक पूर्णतः उभर नहीं सके। दूसरी तरफ, भूख की आग पर नियंत्रण के लिए दलितों ने गन्दे-से-गन्दे कार्यों को करने में तनिक संकोच नहीं किया। मरे जानवरों को ढोना, खाल उतारना, जूते बनाना, मरे मनुष्यों को अग्नि देना अर्थात् चांडाल कर्म, मल-मूत्र को साफ करना आदि घृणित पेशों को अपने जीने का आधार बनाया। इन पेशों में संलग्न दलित बहिष्कृत होकर समाज के हाशिये पर चला गया और अछूतों में भी अछूत कहलाया। असमानता ने आर्थिक शोषण के साथ-साथ अस्पृश्यता, छुआछूत जैसी प्रथा को जन्म दिया, जिसका ज्वलंत चित्रण आत्मकथा में हुआ है। "अस्पृश्यता का ऐसा माहौल कि कुत्ते-बिल्ली, गाय-भैंस को छूना बुरा नहीं था लेकिन यदि चूहड़े का स्पर्श हो जाए तो पाप लग जाता था। सामाजिक स्तर पर इनसानी दर्जा नहीं था। वे सिर्फ जरूरत की वस्तु थे।"

आत्मकथा का शीर्षक 'जूठन' दोहरे अर्थ का द्योतक है। उत्पादन के साधनों के अभाव में अर्थात् आर्थिक स्थिति दयनीय होने के कारण दलितों के हिस्से में जूठन ही आई है। दलितों द्वारा त्यागियों की जूठन का भक्षण पाठक की संवेदना को आन्दोलित करता है। आत्मकथा के वर्णित 'बरात' प्रसंग अत्याधिक मार्मिक है। यह प्रसंग किसी भी गैरदलित साहित्य में नहीं मिलता। लेखक प्रश्न करते हैं कि एक ही राष्ट्र, समाज, गाँव में रहकर इतनी असमानता क्यों है? वह स्पष्ट शब्दों में कहते हैं कि सामाजिक संरचना इसका मूल कारण है। जहाँ किसी के हिस्से धन, सम्पत्ति, राज्य, मान-सम्मान है तो किसी के हिस्से दासता, मजदूरी, बेगारी। एक समुदाय परिवार सहित हाड-तोड़ मेहनत करने के उपरान्त भी दूसरे के घर की जूठन खाने के लिए बाध्य है और दूसरा सदियों से दलितों के श्रम पर आरामदायक जीवन जी रहा है। दूसरे अर्थ में, दलित समाज को शिक्षा भी जूठन के रूप में प्राप्त हुई है। स्वातंत्र्योत्तर भारत में शिक्षा हेतु स्कूलों के द्वार खोले गए। उस समय दलितों के साथ अमानवीय व्यवहार किया जाता था। इस संदर्भ में आत्मकथा का एक अंश उद्धृत है, "स्कूल में दूसरों से दूर बैठना पड़ता था, वह भी ज़मीन पर। अपने बैठने की जगह तक आते-आते चटाई छोटी पड़ जाती थी। कभी-कभी तो एकदम पीछे दरवाज़े के पास बैठना पड़ता था। जहाँ से बोर्ड पर लिखे अक्षर धुँधले

दिखते थे।" यद्यपि वर्तमान दलित समाज में कुछ परिवर्तन हुआ है। आर्थिक, राजनीतिक, शैक्षणिक स्थिति में सुधार हो रहा है। जाति आधारित व्यवस्था की पकड़ थोड़ी शिथिल हुई है। अब दलित अपनी व्यथा की कथा अपने शब्दों में लिख रहे हैं। संवाद की स्थिति बन रही है।

'जूठन' में आत्मकथाकार ने दलित समाज के यथार्थ को तीन पड़ावों में दिखाया है। पहले पड़ाव में दलित समाज सवर्ण, ब्राह्मणवादी मानसिकता के शोषण का शिकार बन जड़ता की स्थिति में था। किसी भी प्राकृतिक संसाधनों में, सार्वजनिक स्थलों में जाने की उसे अनुमति नहीं थी। जीवनयापन के लिए पूर्णतः सवर्णों के ऊपर निर्भर था। मजबूरन उसे सवर्णों की उतरन पहननी पड़ती तथा 'जूठन' खानी पड़ती थी। उसे सवर्णों की बेगारी, बंधुआ मज़दूरी कर अपना जीवन निर्वाह करना पड़ता था। दूसरे पड़ाव में, दलित समाज शिक्षा की ओर अग्रसर होता है। उसमें चेतना का संचार होता है। वह अन्याय के विरुद्ध आवाज़ उठाता है। यहां दलित समाज की जड़ता टूटती है। उसमें आत्मसम्मान की भावना का संचार होता है। अपने विकास के तीसरे पड़ाव में, दलित समाज शिक्षित, संगठित हो, संघर्ष की ओर उन्मुख हुआ है। साहित्यजगत् में भी अपनी उपस्थिति दर्ज करवाता है। सरकारी, गैरसरकारी संस्थानों आदि में अपनी प्रतिभागिता हासिल करता है। अन्य दलित जातियों के उद्बोधन हेतु अनेकानेक सामाजिक एवं साहित्यिक आन्दोलनों तथा कार्यक्रमों का आयोजन किया जा रहा है। अस्तित्व की लड़ाई में सम्पूर्ण दलित समाज को एक प्लेटफार्म पर एकत्रित कर, मानवीय अधिकारों के पक्ष में खड़ा कर रहा था।

ओमप्रकाश वाल्मीकि ने वर्तमान दलित समाज के अंतर्विरोध- आपसी वैमनस्य, छुआछूत, ब्राह्मणवादी मानसिकता, पनपते अवसरवादी तबके आदि पर बेबाक टिप्पणी की है। पढ़ा-लिखा वर्ग किस प्रकार सवर्ण मानसिकता का शिकार होकर सरनेम में संशोधन परिवर्तन कर अपनी मूल पहचान को छिपा रहा है। उनमें व्याप्त हीनभावना किस तरह दलित आन्दोलन को प्रभावित कर रही है। स्वयं दलित सामाजिक कार्यकर्ता तथा आन्दोलनकर्ता जातीय भावना के शिकार हैं और अस्तित्व की लड़ाई के मार्ग में बाधा उत्पन्न कर रहे हैं। दलित आन्दोलन को कमज़ोर कर रहे हैं।

प्रस्तुत आत्मकथा में केवल परिस्थितियों की क्रूरता का यथार्थ चित्रण ही नहीं है, सामाजिक परिवर्तन की सुगबुगाहट भी है। पाठक महसूस करता है कि अस्पृश्यता के लिए सामाजिक परिस्थितियाँ जिम्मेदार हैं। इन परिस्थितियों ने अमानवीय व्यवहार को बढ़ावा दिया है और यदि ये परिस्थितियाँ बदल दी जाएँ तो अस्पृश्यता का व्यवहार भी बदला जा सकता है। दूसरे खण्ड में लेखक ने स्वीकार किया है कि वक्त बदला है, लेकिन फिर भी बहुत कुछ ऐसा है जो सहज नहीं होने दे रहा है। "... जाति ही जहाँ मान-सम्मान और योग्यता का आधार हो, सामाजिक श्रेष्ठता के लिए महत्वपूर्ण कारक हो, वहाँ यह लड़ाई एक दिन में नहीं लड़ी जा सकती है। ... लगातार विरोध और संघर्ष की चेतना चाहिए जो मात्र बाह्य ही नहीं आन्तरिक परिवर्तनगामी भी हो, जो सामाजिक बदलाव को दिशा दे।" आत्मकथा परिवर्तन की उम्मीद के साथ समाप्त होती है। पाठक के हृदय और मानसपटल पर असंख्य सजीव प्रश्न उभरते हैं। दूसरे खण्ड की अपेक्षा आत्मकथा का पहला खण्ड अधिक सशक्त है। दूसरे खण्ड में वाल्मीकि ने पढ़े-लिखे, नौकरीपेशा दलितों के साथ कार्यालयों में हो रहे मानसिक शोषण को प्राथमिकता दी है। यहाँ पढ़ा-लिखा दलित वर्ग केन्द्र में है। अतः आत्मकथा के विवेचन- विश्लेषण उपरान्त कुछ तथ्य सामने आए हैं कि मूल समस्या दलित अस्मिता की पहचान की है। दलित समाज, आर्थिक राजनीतिक, शैक्षणिक दृष्टि से तो उन्नति कर रहा है, लेकिन आज मुख्य प्रश्न दलित समाज के आत्म-सम्मान का है। सामाजिक प्रतिष्ठा तथा मानसिक बदलाव का है।

संदर्भ ग्रंथ :-

1. ओमप्रकाश वाल्मीकि, जूठन, पहला खंड

2, ओमप्रकाश वाल्मीकि, जूठन, दूसरा खंड